

पारंपरिक योग का मानव जीवन में महत्व

ज्योति शर्मा* व प्रो० गणेश शंकर**

प्रस्तावना : योग शब्द युज् धातु से लिया गया है इसलिए इसका अर्थ जोड़, या एकत्रीकरण है। गीता के अनुसार 'आत्मा में स्थित होकर सहज ही परमात्मा से मन को जोड़ना तथा परमात्मा को स्पर्श करके आंतरिक सुख व अनंत आनंद में स्थित होना 'योग' है। योग मन पर नियंत्रण स्थापित करने की प्रक्रिया है। इस संबंध में नागेन्द्र का मत है- "Yoga is that systematic conscious process which can compress the process of man's growth greatly".

योग के माध्यम से व्यक्ति शरीर और मन की स्थिरता को प्राप्त कर सकता है। मन को संयम में रखकर ही योग का प्रारंभ करना चाहिए। शरीर, मन और आत्मा इन तीनों के संयोग को ही योग कहा जाता है। गीता में कृष्ण ने योग दर्शन को अति प्राचीन बताया है। इसको एक उत्तम तथा गूढ़ मर्म का विषय घोषित किया है। इस संबंध में आधुनिक विचारकों का भी यही मत है- 'The practice were infect immensely old concrete material relics of the indus civilization like stone- statues, and pictures depicted on the 'relics' unmistakably indicate the yoga practies were prevalent in the country as early as the third millennium-B.C.'

प्राचीन भारत में योग भारतीयों के लिए मोक्ष प्रप्ति का साधन था। वेदों व उपनिषदों में भी योग दर्शन को आत्म तत्व को साक्षात्कार करने का महत्वपूर्ण साधन बताया गया है। प्राचीन वैदिक व लौकिक साहित्य में योग को पूर्णतः आध्यात्मिक धरातल पर अवतरित किया गया है, योग द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के महत्व को अनदेखा नहीं किया गया है। गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को योग का ज्ञान उस युद्धक्षेत्र में दिया, जहाँ शारीरिक एवं मानसिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली और रणकुशल योद्धागण उपस्थित थे। अर्जुन यद्यपि एक योद्धा था, लेकिन अज्ञान व मोहवश कायरों की भांति युद्ध मैदान पर धनुष छोड़कर बैठ गया था। उसकी इस कायरता और मोह को नष्ट करने के लिए श्री कृष्ण ने अर्जुन को कई प्रकार की योग शिक्षा प्रदान की, जिसमें कर्म योग प्रधान विषय था। इससे सिद्ध होता है कि योग शिक्षा से व्यक्ति सक्रिय, कर्तव्यपरायण, संतुलित और ज्ञानी बनता है। योग साधना से मन को संतुलित रखने में सहायता प्राप्त होती है तथा समत्व बुद्धि को जन्म मिलता है। इस समत्व बुद्धि के फलस्वरूप किसी भी प्रतिकूल व संकटमयी परिस्थिति में व्यक्ति स्थिर रह सकता है। यदि श्री कृष्ण अर्जुन को योग की शिक्षा नहीं देते तो अर्जुन अपने कर्तव्य से तथा अपनी शारीरिक सक्रियता और मानसिक स्थिरता से विमुख हो जाता। अतः स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण का गीता में उपस्थित योग दर्शन का संदेश सम्पूर्ण मानव जाति के लिए कर्तव्यपरायणता व निष्ठा का संदेश है। शायद ही विश्व के अन्य प्राचीन साहित्य में योग शिक्षा का ऐसा महान दर्शन उपलब्ध होता है।

योग व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। गीता में दर्शाया गया है कि योग विकासोन्मुख, व्यापक और बहुउद्देशीय स्वरूप का है। योग से व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है, कार्यक्षम बन सकता है तथा शारीरिक और मानसिक दक्षता को प्राप्त कर शांतिप्रिय हो सकता है। योग प्राचीन काल में शांति, दीर्घायु व आरोग्य प्रदान करने वाला था, जिसका लाभ प्राचीन काल में भी स्वास्थ्य साधक उठाया करते थे।

प्राचीन काल में योग के प्रकार : प्राचीन साहित्यों का प्रमुख ग्रंथ 'गीता' है, यह जीवन दर्शन का महान ग्रन्थ है जिसमें सभी अध्याय विभिन्न विषयों पर योग दर्शन की गहनतम विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं, फिर भी शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से गीता में प्रतिपादित योग के प्रमुख रूप से तीन प्रकार देखने का मिलते हैं- ज्ञानयोग, कर्मयोग, ध्यानयोग।

ज्ञानयोग : मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओं में कर्तापन के अभिमान से रहित होकर एकीभाव में स्थित रहने का नाम "ज्ञान योग" है। यह योग मनुष्य में सतर्कता का विस्तार करता है। इसी को संन्यास व सांख्य योग इत्यादि नाम दिए गये हैं। ज्ञान को शुद्ध अतःकरण वाला पुरुष दीर्घकाल की साधना के बाद ही अनुभवजन्य बना पाता है।

कर्म योग : फल और आसक्ति को त्यागकर समत्वबुद्धि से कर्म करने को निष्काम कर्म कहा गया है। गीता में समत्व भाव को योग कहा गया है। समत्व का अर्थ किसी भी कर्म में उसके पूर्ण होने और न होने तथा उसके फल में समभाव

*शोधार्थी, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.

**विभागाध्यक्ष, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.

रहने का नाम है। इस सम्भाव को धारण करने वाले कर्मयोगी का शरीर नियंत्रण में रहता है तथा उसका अंतःकरण भी शुद्ध हो जाता है। कर्म योग की महत्ता जीवन के क्षेत्र में अत्यधिक है, क्योंकि बिना कर्म का संपादन किए इस संसार में कुछ भी नहीं है। संपूर्ण गीता में कृष्ण ने कर्म योग को आधारभूत और महत्वपूर्ण दर्शाया है। कर्म योग सभी प्रकार के योग का आधार है और यह योग का एक ऐसा प्रकार है जो व्यक्ति के सुदृढ़ जीवन और उसमें स्वास्थ्य प्राप्ति के मूल आधार की रचना करता है। यह एक ऐसा मार्ग है जो हमें पूर्ण रूपेण सक्रिय रखते हुए कार्यों के फल को मानवता के प्रति समर्पित करने की सीख देता है।

ध्यान योग : ध्यान मन की एकाग्रचित स्थिति है। इसमें इन्द्रियो पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है तथा इसमें कर्मों को ईश्वर के प्रति समर्पित किया जाता है। इस प्रकार गीता और महाभारत में दर्शाए गए योग में हमें शरीर, मन और इन्द्रियों के द्वारा होनेवाली क्रियाओं में एकरूपता की प्राप्ति का दर्शन उपलब्ध होता है। शारीरिक शिक्षा के दृष्टिकोण से यदि विचार किया जाए तो इन योग की क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति का स्वास्थ्य विकसित होता दिखाई पड़ता है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास में इन योग क्रियाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्राचीन काल में योग विधि और योग सिद्धि : प्राचीन साहित्यों के प्रमुख ग्रन्थ गीता में कई प्रकार के योग की मीमांसा है जैसे सांख्ययोग, कर्मयोग, सन्यासयोग, ज्ञानविज्ञान योग, ब्रह्म योग, भक्ति योग व ध्यान योग आदि इनमें शरीर और मन को संतुलित रखने के दृष्टिकोण से ध्यान योग का महत्व अधिक है। गीता में ध्यान योग की विधि इस प्रकार दर्शायी है- ❖ अपने आसन पर मृगछाल बिछाना। ❖ आसन को न अधिक उँचा और न अधिक नीचा करना। ❖ स्थिर होकर उस आसन पर बैठना तथा मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करते हुए योगाभ्यास करना चाहिए। ❖ काया, शिर और ग्रीवा को एकसमान और अचल धारण किए हुए नासिका के अग्रभाग को देखकर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ और ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ भयरहित, शांत और सावधान होकर मन को वश में करके स्थिर होना चाहिए। योगाभ्यास करते समय निर्मल भाव, मन की शुद्धि और प्रसन्नता के लिए 'अष्टांग योग' का भी बहुत महत्व है। पतंजलि योग सूत्र में अष्टांग योग का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन काल में योग के आधारभूत नियम :

इन्द्रिय निग्रह : इन्द्रिय निग्रह का आशय है इन्द्रियों को नियंत्रित करना, जिससे मन की चंचलता समाप्त होती है। और मन एकाग्र स्थिति को ग्रहण करता है तथा इससे बुद्धि भी स्थिर होती है। यदि इन्द्रिय निग्रह नहीं किया तो मन विचलित होकर विवेक को समाप्त करदेता है। यह नियंत्रण 'प्राणायाम' नामक आंतरिक क्रिया से किया जाता है। मन, बुद्धि और शरीर ये तीनों एक दूसरे के पूरक हैं, मन की नियंत्रित अवस्था में विवेक जागृत होता है, बुद्धि स्थिर होकर योग्य निर्णय ले सकती है तथा इसके परिणामस्वरूप शरीर का संचालन योग्य रीति से हो सकता है।

ब्रह्मचर्य : योग का दूसरा महत्वपूर्ण नियम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है। यद्यपि प्राचीन भारत के साहित्य में ब्रह्मचर्य में शरीर की शुद्धि, मन की शुद्धि व इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित करने का अभिप्राय अंतर्भूत है, लेकिन गीता में ब्रह्मचर्य को मुख्य रूप से 'काम' नामक वृत्ति को संयमित रखने के संदर्भ में बताया गया है, काम के द्वारा शारीरिक और मानसिक शक्ति का क्षय होता है, साथ ही वह आत्मिक मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, इसलिए यह मनुष्य का महाशत्रु है जिसका ज्ञानरूपी तलवार से हनन होना चाहिए।

सात्विक और संतुलित आहार तथा विश्राम का नियम : अन्न का शरीर और मन दोनों पर प्रभाव पड़ता है। योग में शारीरिक और मानसिक शुद्धि का विशेष महत्व है, अतः ऐसा भोजन लेना चाहिए जिससे मनुष्य की इन्द्रियाँ उग्र स्वरूप की न हो तथा उसका मन शांत बना रहें। ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए जो संयम से युक्त हो। चूँकि योगी पूर्णतः स्वभाव से सात्विक होता है इसलिए उसे सात्विक भोजन ही लेना चाहिए। ऐसा आहार व्यक्ति के लिये बलवर्धक और आरोग्यवर्धक होता है। जिससे मन की एकाग्रता सिद्ध होती है, तथा वह अपने कर्तव्य को दक्षतापूर्ण और आरोग्यवर्धक रूप से पूर्ण कर पाता है। जिससे मन की एकाग्रता सिद्ध होती है तथा वह अपने कर्तव्य को दक्षतापूर्ण कर सकता है।

बाहरी व आंतरिक शुद्धि और आत्मसंतुष्टि : योग का एक महत्वपूर्ण नियम शरीर की बाहरी, व आंतरिक शुद्धि के साथ आत्मसंतुष्टि भी है। बाहरी शुद्धि में शरीर की स्वच्छता, इन्द्रियों पर नियंत्रण, उत्तम कर्मों का आचरण, स्वधर्म का पालन, अहिंसा, मन, वाणी और शरीर से किसी को कष्ट न देना, आदि सम्मिलित होते हैं। आन्तरिक शुद्धि का अर्थ है छल, कपट, राग, द्वेष, क्रोध, मोह, अहंकार, शोक इत्यादि से मुक्त रहना तथा आत्मसंतुष्टि का अर्थ सभी परिस्थितियों में संतुष्ट रहते हुए कर्म करना।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन साहित्यो में उपलब्ध योग से सम्बंधित दार्शनिक अभिव्यक्ति जीवन की उच्चतम और आदर्श पराकाष्ठा है। प्राचीन भारतीयों को जीवन के समस्त अंगों को स्वस्थ एवं विकसित अवस्था में रखने के लिए योग दर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ होगा।

मानव जीवन में महत्व : प्राचीन साहित्य में उपलब्ध शिक्षा प्रणाली पर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में शारीरिक शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान और कला का सुव्यवस्थित रूप से अध्ययन और अध्यापन कराया जाता था। इन सब विषयों के बीच योग विद्या के वैज्ञानिक व दार्शनिक सिद्धान्तों ने व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य, के साथ-साथ सामाजिक व आत्मिक अनुशासन पर भी प्रयोगात्मक विधियों के द्वारा बल दिया। आधुनिक समय में व्यक्ति का चित्त अपने केन्द्र से भटक गया है। आज के मनुष्य को शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक संतुलन की बहुत आवश्यकता है। उपरोक्त तीनों के समन्वय को स्थापित करने के लिए योग महत्वपूर्ण साधन है। आज सम्पूर्ण जगत में निराशा, आक्रोश, अंशाति और असंतोष देखने को मिलता है। मनुष्य का जीवन दिन प्रतिदिन इनसे प्रभावित हो रहा है वह इन सब से इस तरह घिर चुका है, कि सामुहिक स्वास्थ्य तो दूर की बात है वह व्यक्तिगत स्वास्थ्य को भी अनदेखा करता जा रहा है। विश्व को भारत की सबसे बड़ी देन योग है। योग भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की उन्नति के लिए योग की महत्ता को प्रायः सभी दर्शनों एवं भारतीय सम्प्रदायों के द्वारा स्वीकार किया गया है, तथा वर्तमान जीवन में इसकी आवश्यकता को आधुनिक विज्ञान विभिन्न शोधों के द्वारा प्रमाणित करता है, योग जीवन जीने की कला सीखाता है। जिससे मनुष्य शारीरिक व मानसिक रूप से विचलित न हो, तथा काम, क्रोध इत्यादि संवेगों को नियंत्रित करते हुआ सर्वांगीण स्वास्थ्य को प्राप्त कर सके।

उपसंहार : भौतिक एवं विज्ञान की दृष्टि से आज का मानव अत्यंत समृद्ध है। लेकिन आध्यात्मिक, नैतिक, धार्मिक आदि दृष्टि से उसका विकास रुका है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तरह-तरह की समस्याएँ निर्मित हो रही है। ऐसी स्थिति में हर व्यक्ति ऐसा बहुप्रभावित समाधान का उपाय ढूँढ़ रहे है। वर्तमान सन्दर्भ में देखें तो परिवार संस्था के अन्दर कई प्रकार की समस्याएँ पनप रही है। असमायोजन, असहनशीलता, संवेदनहीनता, स्वार्थपरता, एकांकीपन जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ परिवार की धूरी को कमजोर कर रही है। ऐसे में व्यक्ति योग प्रतिपादित उपायों का अवलंबन करें तो समस्याएँ स्वयं दूर हो जायेंगी। आध्यात्मिकता जीवन में अवतरित होती है तो जीवन उत्कृष्टता तथा देवत्व की ओर अग्रसर होने लगता है यह सम्भावना केवल योगजनित विद्याओं द्वारा ही संभव है। मनुष्य चाहता तो है आत्मिक मार्ग में परन्तु उसे उसके चित्त के कर्मबीज अच्छे-बुरे संस्कार तथा अज्ञान जनित कारक तत्व बाधक के रूप में खड़े हो जाते हैं। उसे इस मार्ग में आगे बढ़ने से रोक देते हैं। ऐसी विषमता पूर्ण कारण का समाधान यदि कोई है तो वह योग है। योगाभ्यास करने वाला साधक निःसन्देह आध्यात्मिक क्षमताओं से सम्पन्न हो जाता है।

सन्दर्भ :

1. अरविन्द, श्री. (2012). वेद रहस्य पृ. सं. 78. पण्डितचरी. श्री अरविन्द सोसायटी.
2. शर्मा, डा. गंगा सहाय. (2017). ऋग्वेद पृ. सं. 122. विश्व बुक प्राइवेट लिमिटेड.
3. मन्दिर, श्री शिव प्रकाशन. (2015). यजुर्वेद पृ. सं. 156. लक्ष्मी प्रकाशन.
4. शास्त्री, आचार्य उदयवीर. (2015). योगदर्शनम पृ. सं. 76. विजय कुमार गोविन्दम हसानन्द.
5. उप्रेती, पंथानेशचन्द्र. (2018). याज्ञवल्क्यस्मृति पृ. सं. 113. परिमल पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड.
6. गीताप्रेस. (2020). महाभारत. गोरखपुर पृ. सं. 43. गीताप्रेस.
7. आचार्य, पं. श्री राम शर्मा. (2017). 108 उपनिषद (ज्ञान खंड, साधना खंड, ब्रह्म विद्या खंड) पृ. सं. 98. संस्कृति संस्थान.
8. कुमार, डॉ० कामाख्या. (2017). योग महाविज्ञान पृ. सं. 67. भारत. स्टैण्डर्ड प्रकाशक.
9. उत्तम, अजय कुमार. (2004). शिव संहिता पृ. सं. 87. भारतीय विद्या संस्थान.
10. दिगम्बर जी, स्वामी. झा, डा. पिताम्बर. (1998). हठप्रदीपिका, पृ. सं. 32. लोणावाला : केवल्यधाम योग संस्थान.
11. भारद्वाज, प्रो. ईश्वर. (2011). मानव चेतना पृ. सं. 55. सत्यम पब्लिशिंग हाउस.
12. शर्मा, ज्योति. गिरी, प्रो. गणेश. (2021). हठयोग : आधुनिक सदर्भ में प्रासंगिकता. दृष्टिकोण जर्नल (यु.जी.सी. केयर), 13 (1), 1959-1961.